जब मनुष्य ''न'' और परमेश्वर ''हां'' कहता है (5:12-42)

वर्षों तक, सर्वसत्तावादी सरकारों ने मसीहियत को नाश करने के यत्न किए हैं। मसीहियत के आरम्भिक दिनों में, रोमी साम्राज्य पूरी सामर्थ से कलीसिया के विरुद्ध हो गया था। हाल ही के इतिहास में, साम्यवाद ने मसीहियत के प्रभाव को समाप्त करने की पूरी-पूरी कोशिश की। इन संगठनों के नेताओं को जो बात अमान्य थी, वह यह थी कि न तो यीशु और न उसके प्रेरित क्रांतिकारी थे।[1]

साधारण तौर पर पश्चिमी समाज और विशेष कर यू. एस. ए., में अधिकतर लोग मसीहियत की तुलना लोकतन्त्र से करते हैं, परन्तु मसीह ने सरकार की किसी भी प्रणाली पर अपनी स्वीकृति की मुहर नहीं लगाई। हमारे धर्म को सताव के समय से स्वाधीनता में पूरा करना आसान है, परन्तु नया नियम हमें सरकार के किसी भी स्वरूप में अच्छे नागरिक बनने के लिए कहता है। संसार रोम के लौह शासन के अधीन था और ज़ालिम नीरो सिंहासन पर बैठा था जब पौलुस ने लिखा:

> हर एक व्यक्ति प्रधान अधिकारियों के आधीन रहे; क्योंकि कोई अधिकार ऐसा नहीं, जो परमेश्वर की ओर से न हो; और जो अधिकार हैं; वे परमेश्वर के ठहराए हुए हैं, इस से जो कोई अधिकार का विरोध करता है, वह परमेश्वर की विधि का साम्हना करता है, और साम्हना करने वाले दण्ड पाएंगे। क्योंकि हाकिम अच्छे काम के नहीं परन्तु बुरे काम के लिए डर का कारण है; सो यदि तू हाकिम से निडर रहना चाहता है, तो अच्छा काम कर और उसकी ओर से तेरी सराहना होगी; क्योंकि वह तेरी भलाई के लिए परमेश्वर का सेवक है। परन्तु यदि तू बुराई करे, तो डर; क्योंकि वह तलवार व्यर्थ लिए हुए नहीं और परमेश्वर का सेवक है; कि उसके क्रोध के अनुसार बुरे काम करने वाले को दण्ड दे। इसलिए आधीन रहना न केवल उस क्रोध से परन्तु डर से अवश्य है, वरन विवेक भी यही गवाही देता है (रोमियों 13:1-5)।

ध्यान दें, ''कोई अधिकार ऐसा नहीं जो परमेश्वर की ओर से न हो और जो अधिकार हैं, वे परमेश्वर के ठहराए हुए हैं।'' इसका यह अर्थ नहीं कि हर सरकार को परमेश्वर का समर्थन है और वह परमेश्वर के आदेशों को ही कार्यान्वित करती है।[2] इसका अर्थ यह है कि बहुत पहले परमेश्वर ने मनुष्यजाति की भलाई के लिए नागरिक सरकार की धारणा

को प्रचलित किया था। नागरिक सरकार के बिना, अराजकता और अव्यवस्था का शासन था। अपवाद हैं, परन्तु व्यापक तौर पर हर सरकार (अन्यायी से अन्यायी भी) कानून का पालन करने वालों को इनाम और कानून तोड़ने वालों को सज़ा देती है।

सरकार के प्रति संक्षेप में हमारी मुख्य ज़िम्मेदारी तीन बातों में है - अदा करना, प्रार्थना करना और आज्ञा मानना : (1) हमें कर *अदा करने* चाहिए। मत्ती 22:17-21 में यीशु ने स्पष्ट किया, और रोमियों 13:6, 7 में पौलुस ने पुनः इस पर बल दिया।[3] (2) हमें सभी सरकारी अधिकारियों के लिए *प्रार्थना* करनी चाहिए (1 तीमुथियुस 2:1,2)। (3) हमें देश के कानून का *पालन करना* चाहिए। पौलुस की स्पष्ट शिक्षा के अलावा, पतरस ने लिखा, ''प्रभु के लिए मनुष्यों के ठहराए हुए हर एक प्रबन्ध के अधीन रहो, राजा के इसलिए कि वह सब पर प्रधान है। और हाकिमों के ... क्योंकि परमेश्वर की इच्छा यह है ... '' (1 पतरस 2:13-15)। पतरस ने यह टिप्पणी भी की कि सच्चाई से आज्ञा पालन करना सम्मान देकर हो सकता है। ''राजा का सम्मान'' करो (1 पतरस 2:17)। कुछ अनुवादों में ''सम्मान'' के लिए ''आदर''[4] शब्द का प्रयोग हुआ है। विरोध में कोई कह सकता है, ''परन्तु यदि सरकारी अधिकारी मुझ से आदर लेने के योग्य ही न हो तो?'' याद रखें जिस ''राजा'' की पतरस ने बात की थी, वह ज़ालिम नीरो था। यदि आप व्यक्ति का आदर नहीं करते तो उसके पद का आदर अवश्य करें।

नये नियम की यह बुनियादी शिक्षा हमारे इस अध्ययन की पृष्ठभूमि है। इस पाठ में हम कुछ प्रश्नों पर विचार करना चाहेंगे: क्या कोई ऐसा भी समय आता है जब हमें देश के कानून का पालन नहीं करना चाहिए? यदि किसी कारणवश हमें अधिकारियों की आज्ञा न माननी हो, तो *बाकी समय में हमारा व्यवहार कैसा होना चाहिए?* शास्त्र के हवाले 5:12-42 में जाते हुए इन बातों को मन में रखें।

जब लंगड़े भिखारी को चंगा करने के बाद पतरस और यूहन्ना गिरफ्तार हुए तो महासभा ने उन्हें, ''चुनौती देकर यह कहा कि यीशु के नाम से *कुछ भी* न बोलना और न सिखलाना'' (4:18)। प्रेरितों ने सभा से पूछा कि परमेश्वर की बात मानने से भला क्या उनका कहा मानना अच्छा है (आयत 19), और वे ''परमेश्वर का वचन हियाव से सुनाते रहे'' (आयत 31)। इस पाठ के आरम्भ में ही ...

> ''... प्रेरितों के हाथों से बहुत चिह्न और अद्‌भुत काम लोगों के बीच में दिखाए जाते थे; और वे सब एक चित्त होकर सुलैमान के ओसारे में [शिक्षा देते और वचन सुनाते थे[5]] ... और विश्वास करने वाले बहुतेरे पुरुष और स्त्रियां प्रभु की कलीसिया में और भी अधिक आकर मिलते रहे (5:12-14)।

अन्य शब्दों में, प्रेरित वही काम कर रहे थे, जिसके कारण पतरस और यूहन्ना पहले भी संकट में पड़े थे!

प्रसिद्धि (5:15, 16)

15 और 16 आयतों में प्रेरितों की प्रसिद्धि और सामर्थ दोनों ही प्रकाश में आते हैं:

> यहां तक कि लोग बीमारों को सड़कों पर ला लाकर, खाटों और खटोलों पर लिटा देते थे, कि जब पतरस आए, तो उस की छाया ही उन में से किसी पर पड़ जाए। और यरूशलेम के आस पास के नगरों से भी बहुत लोग बीमारों और अशुद्ध आत्माओं के सताए हुओं को ला लाकर इकट्ठे होते थे, और सब अच्छे कर दिए जाते थे।

प्रेरितों की ख्याति दूर-दूर तक फैल जाने से, लोग हर जगह से आने लगे। वे बीमारों और अशुद्ध आत्माओं के सताए हुए लोगों को लाते थे।[6] सो बहुत से लोग आते और यह ध्यान में रखकर कि प्रेरितों और अन्य मसीहियों से क्षेत्र में भीड़ न हो, वे उन मार्गों में खड़े हो जाते, जहां से प्रेरितों ने जाना होता था, ''कि जब पतरस[7] आए तो उस की छाया ही उन में से किसी पर पड़ जाए'' (आयत 15)। मुझे नहीं मालूम कि पतरस की छाया से किसी को लाभ हुआ या नहीं। एक अवसर पर लोग, यीशु के वस्त्र के आंचल से ही चंगे हुए (देखिए मत्ती 9:20-22; 14:36), और एक अन्य अवसर पर पौलुस के रूमाल से ही कुछ लोग चंगे हो गए थे (प्रेरितों 19:11, 12)। शायद लोग रोगियों को यह *सोचकर* सड़क पर लिटाते होंगे कि इससे उन्हें कुछ मदद मिलेगी[8] और फिर प्रेरित आकर वहां रुककर उन्हें दूसरे तरीके से चंगा कर देते होंगे। किसी भी तरह हो, परन्तु बीमार और सताए हुए ''*सब* अच्छे कर दिए जाते थे।'' आज की ''चंगाई सभाओं'' के बाद निराश लोगों के कानों में यही शब्द गूंज रहे होते हैं: ''तेरा विश्वास कम है!'' नये नियम के समय से तो यह उलट बात है। जब यीशु और प्रेरित चंगाई के दान का प्रयोग करते थे, तो वे नाकाम नहीं होते थे।

हर आश्चर्यकर्म ''यीशु के नाम'' से किया जाता था (3:6, 16; 4:10), और हर संदेश में यही दावा होता था कि आकाश के नीचे ''किसी दूसरे के द्वारा उद्धार नहीं''(4:12)। प्रेरितों की बढ़ती प्रसिद्धि और महासभा के आदेश के उल्लंघन के कारण उन्हें फिर सभा के सामने लाने में केवल थोड़े ही समय का फासला था।

बन्दीगृह (5:17, 18)

''तब महायाजक[9] और उसके सब साथी (जो सदूकियों[10] के पंथ[11] के थे) डाह से भर कर उठे;[12] और प्रेरितों को पकड़कर बन्दीगृह में बन्द कर दिया'' (आयतें 17, 18)। इस बार केवल पतरस और यूहन्ना ही नहीं बल्कि सभी प्रेरितों को बन्दी बना लिया गया। मूल भाषा में, ''उन्हें सार्वजनिक कारावास में डाल दिया'' जिसका अक्षरश: अर्थ है ''जनता के सामने हवालात में डाला।'' उन्होंने लोगों के सामने गिरफ्तार करके प्रेरितों को साधारण कैद में डाल कर अपराधी घोषित करके बदनाम करने की कोशिश की।

घोषणा (5:19-21क)

परमेश्वर की योजनाएं और थीं। ''परन्तु रात को प्रभु के एक स्वर्गदूत[13] ने बन्दीगृह के द्वार खोल'' दिए (आयत 9क)। हमें यह नहीं बताया गया है कि यह सब द्वारपालों की जानकारी के बिना कैसे हुआ। हो सकता है कि यहां भी अध्याय 12 में पतरस के छूटने जैसा ही कुछ हुआ हो।

परमेश्वर के दूत ने उन्हें उनकी सुरक्षा के लिए नहीं, बल्कि इसलिए छुड़ाया था कि उद्धार के संदेश का प्रचार बिना रुके होता रहे। ''... उन्हें बाहर लाकर (स्वर्गदूत ने) कहा, कि जाओ मन्दिर में खड़े होकर इस जीवन की सब बातें लोगों को सुनाओ (आयतें 19ख, 20)।[14] ''इस जीवन की बातें'' यीशु की बातों का जो कि जीवन का स्रोत है (यूहन्ना 1:4; 6:68; 14:6), और मसीह में मिलने वाले जीवन के बारे में बताना ही था!

पौ फटने तक प्रेरित छूट गए थे। यदि यरूशलेम की कैद में मुझे जागकर रात गुज़ारनी पड़ती, तो मैं खूब गर्म पानी के साथ नहाता, कपड़े बदलता और एकान्त जगह ढूंढता जहां नींद आराम से आ सकती हो। परन्तु, प्रेरितों को प्रभु की ओर से आज्ञा मिली थी। शहर के सब से खतरनाक स्थान पर जाकर जोखिम भरा काम करने के लिए जाने में उन्होंने बिल्कुल समय नहीं गंवाया ''वे यह सुन कर भोर होते ही मन्दिर में जाकर उपदेश देने लगे'' (आयत 21क)।

आतंक (5:21ख-25)

जब प्रेरित मन्दिर में जाने को तैयार थे, महायाजक और उसके षड्यन्त्रकारी साथी विचार-विमर्श के लिए इकट्ठे हो रहे थे। यहां पर मज़ाक की स्थिति ही देखी जा सकती है: जिस समय सभा यीशु के प्रचार पर पाबन्दी लगाने की योजना बनाने के लिए इकट्ठी हुई थी, तो जिन लोगों को उन्होंने गिरफ्तार किया था, वे सौ फुट की दूरी पर ही यीशु का प्रचार कर रहे थे!

''महायाजक और उसके साथियों ने आकर महासभा को और इस्राएलियों के सब पुरनियों को इकट्ठे किया,[15] और बन्दीगृह में कहला भेजा कि उन्हें लाएं'' (आयत 21ख)। फलस्तीन के सबसे शक्तिशाली संगठन को बहुत बड़ा झटका लगने वाला था।

> परन्तु प्यादों ने[16] वहां पहुंचकर उन्हें बन्दीगृह में न पाया, और लौटकर संदेश दिया कि ''हम ने बन्दीगृह को बड़ी चौकसी से बन्द किया हुआ, और पहरेवालों को बाहर द्वारों पर खड़े पाया, परन्तु जब खोला तो भीतर कोई न मिला'' (आयतें 22, 23)।

आप उनके उतरे हुए चेहरों को देखना नहीं चाहेंगे जब वे एक दूसरे की ओर देखते और आश्चर्य में पड़े हुए थे कि यह सब क्या हो रहा है? ''जब मन्दिर के सरदार और महायाजकों ने ये बातें सुनीं, तो उनके विषय में भारी चिन्ता में पड़ गए कि यह क्या हुआ चाहता है'' (आयत 24)। वे बहुत सी बातों में उलझे हुए होंगे: ये कैसे लोग थे जो बिना

किसी की जानकारी के वहां से बच निकले? वे बचकर निकल कैसे *गए* (कहीं मन्दिर के पहरेदारों में से या फिर महासभा में उनका कोई हमदर्द तो नहीं था)? *अब* वे कहां थे? सब से बढ़ कर, वे इस बात से चकित थे कि ''इसका परिणाम क्या होगा'' इसका अन्त कहां होगा?

वे उत्तर पाने के लिए संघर्षरत थे कि ''इतने में किसी ने आकर उन्हें बताया, कि देखो जिन्हें तुमने बन्दीगृह में बन्द रखा था, वे मनुष्य मन्दिर में खड़े होकर लोगों को उपदेश दे रहे हैं!''(आयत 25)। उन्हें अपने कानों पर विश्वास नहीं हो रहा था। उन्होंने सोचा होगा कि प्रेरितों के लिए बचने का केवल एक ही उपाय था कि वे शहर छोड़ कर भाग जाएं। अब ख़बर मिली कि वे लोग तो उनसे थोड़ी ही दूरी पर – वही कर रहे थे, जिसे न करने का उन्हें आदेश दिया गया था!

विनम्रता (5:26)

सभा ने मन्दिर के पहरेदारों को आदेश दिया कि वे प्रेरितों को उसी वक्त फिर गिरफ्तार कर लें। यहां पर पुन: मज़ाक का ही दृश्य मिलता है: ''तब सरदार, प्यादों के साथ जाकर, उन्हें ले आया परन्तु बरबस नहीं,[17] क्योंकि वे लोगों से डरते थे, कि हमें पत्थरवाह न करें'' (आयत 26)। मुझे लगता है कि सरदार घबराया हुआ था। जिन लोगों को उसने गिरफ्तार करना था, वे लंगड़ों को चला सकते थे और दुष्टात्माओं को निकाल सकते थे! फिर, वे कड़ी से कड़ी सुरक्षा में से भी तो बिना किसी की जानकारी के बच कर निकल सकते थे! इसके अलावा लोगों को भी वे अच्छे लगते थे। मैं उसे पतरस के कानों में कुछ कहते हुए देखने की कल्पना कर सकता हूं, ''मुझे आपकी मदद की ज़रूरत है। हमें आपको अन्दर करने का आदेश मिला है। यदि हम उसे नहीं मानते तो, हमें उसके लिए दण्डित किया जाएगा परन्तु यदि हम ऐसा करते हैं तो स्थिति और भी बिगड़ सकती है! साफ़-साफ़ कहूं, आप ही बताइए मैं क्या करूं।'' मैं पतरस को मुस्कुराते हुए और यह कहते देखता हूं, ''कोई बात नहीं! हम आप के साथ चलते हैं।'' सशस्त्र सिपाहियों के साथ उत्तेजित भीड़ में से गुज़रने से पहले उसने अन्य प्रेरितों को भी समझा दिया होगा।

अपनी बाइबल में ''बरबस नहीं'' शब्द को रेखांकित कर लें। प्रेरित अधिकारियों का विरोध भी कर सकते थे, जिससे उन्हें बल का प्रयोग करना पड़ता। वे आसानी से वहां पर बहुत बड़ा दंगा और क्रांति फैला सकते थे। उनका एक इशारा होने पर, पत्थरों की बौछार से मन्दिर के रखवाले पत्थरों के नीचे दब जाते। परन्तु उन्होंने कोई गड़बड़ी नहीं करनी चाही। क्यों? क्योंकि वे उसके चेले थे जो ''गाली सुनकर गाली नहीं देता था और दुख उठाकर किसी को भी धमकी नहीं देता था, पर अपने आप को सच्चे न्यायी के हाथ में सौंप देता था'' (1 पतरस 2:23)। जब यीशु को गिरफ्तार किया गया था, तो उसने कोई विरोध नहीं किया।[18] प्रेरितों के काम की पुस्तक में, जब भी प्रेरितों को गिरफ्तार किया गया, उन्होंने विरोध प्रकट नहीं किया, परमेश्वर उन्हें जिस प्रकार बन्दीगृह के बाहर इस्तेमाल कर सकता था उसी प्रकार वह उनकी सेवा बन्दीगृह के अन्दर भी ले सकता था।

दबाव (5:27, 28)

गिरफ्तार करने वाले लोग सभागृह तक पहुंचे। ''उन्होंने उन्हें फिर लाकर, महासभा के साम्हने खड़ा कर दिया'' (आयत 27क)। सभा उनसे कई प्रश्न पूछ सकती थी, जिसमें यह प्रश्न भी हो सकता था कि किसी की जानकारी के बिना वे बचकर निकल कैसे गए। परन्तु स्पष्ट है कि यह प्रश्न नहीं पूछा गया। हो सकता है कि सभा इसका उत्तर जानना ही नहीं चाहती थी। हो सकता है कि उन्हें संदेह हो परन्तु वे अपने संदेह की पुष्टि करना नहीं चाहते थे।

इसके विपरीत, एक क्रूर महायाजक ने पतरस और यूहन्ना को मिले आदेश का उल्लंघन करने के लिए डांटा:

> और महायाजक ने उन से पूछा ''क्या हमने तुम्हें चिता कर आज्ञा न दी थी कि तुम इस नाम से उपदेश न करना? तौभी देखो, तुमने सारे यरूशलेम को अपने उपदेश से भर दिया है, और उस व्यक्ति का लोहू हमारी गर्दन पर लाना चाहते हो'' (आयतें 27ख, 28)।

उनके विरुद्ध दो आरोप लगाए गए थे:

(1) सभा ने कड़ी आज्ञाएं दी थीं कि यीशु के नाम से शिक्षा देना बन्द कर दें, परन्तु उसके बावजूद प्रेरितों ने अपनी शिक्षा से सारे यरूशलेम को *भर दिया* था! यीशु का नाम हर व्यक्ति की ज़ुबान पर था। सभा के सदस्यों को यीशु के नाम का रोग लग गया था! यह प्रेरितों के लिए कितना बड़ा सम्मान था! कलीसिया की वृद्धि के सबसे महत्वपूर्ण ''भेदों'' में से यह एक था: जितना अधिक बीज बोया गया, उतनी ही उपज अधिक हुई! मेरी कितनी इच्छा है कि आज यह कहा जाए कि हमने संसार को ... या अपने देश को ... या अपने राज्य को ... या अपने शहर को ही यीशु की शिक्षा से भर दिया!

(2) दूसरा आरोप यह था कि प्रेरित उन्हें यीशु की मृत्यु का ज़िम्मेदार ठहराने की कोशिश कर रहे थे: तुम ''उस व्यक्ति का लोहू हमारी गर्दन पर लाना चाहते हो।'' जब पीलातुस ने कहा था, ''मैं इस धर्मी के लोहू से निर्दोष हूं: तुम ही जानो,'' तो वे चिल्लाकर कहने लगे थे, ''इस का लोहू हम पर और हमारी संतान पर हो!''(मत्ती 27:24, 25)। जब प्रेरितों ने उनके ही कथन में उन्हें पकड़ा तो उन्हें बुरा लगा![19]

ध्यान दें कि महायाजक यीशु से इतनी घृणा करता था कि मुंह से वह उसका नाम भी नहीं ले सका: ''हम ने तुम्हें चिताकर आज्ञा न दी थी कि ... *इस नाम* से उपदेश न करना; ... तुम ... *उस व्यक्ति* का लोहू हमारी गर्दन पर लाना चाहते हो।''

प्राथमिकताएं (5:29)

एक बार फिर, प्रेरितों पर दबाव ही नहीं बल्कि अविश्वसनीय दबाव था। वे और दृढ़ता से काम करते या हार मान कर बैठ जाते?

> तब पतरस और, और प्रेरितों ने उत्तर दिया, कि ''मनुष्यों की आज्ञा से बढ़कर परमेश्वर की आज्ञा का पालन करना ही कर्तव्य कर्म है। हमारे बाप दादों के परमेश्वर ने यीशु को जिलाया,[20] जिसे तुम ने क्रूस पर लटका कर मार डाला था।[21] उसी को परमेश्वर ने प्रभु[22] और उद्धारक ठहराकर अपने दहिने हाथ से सर्वोच्च कर दिया, कि वह इस्राएलियों को मन फिराव[23] की शक्ति और पापों की क्षमा प्रदान करे। और हम इन बातों के गवाह हैं, और पवित्र आत्मा भी, जिसे परमेश्वर ने उन्हें दिया है, जो उसकी आज्ञा मानते हैं''[24] (आयतें 29-32)।

पतरस और अन्यों ने अपने ऊपर लगे दोनों आरोपों को मान लिया: हां, वे यीशु की गवाही देने के दोषी थे। हां, वे महासभा पर यीशु की मृत्यु का आरोप लगाने के दोषी थे। सच तो यह है, कि सभा के सामने उन्होंने बेझिझक कहा, '' ... जिसे *तुमने* क्रूस पर लटका कर मार डाला था!''

वे इतनी निडरता से क्यों बोले? क्योंकि उन्होंने कुछ आध्यात्मिक प्राथमिकताएं कायम की थीं। आरम्भिक सुनवाई के समय, पतरस और यूहन्ना ने अपनी इन प्राथमिकताओं को अप्रत्यक्ष रूप से कहा था: ''तुम ही न्याय करो, कि क्या यह परमेश्वर के निकट भला है, कि हम परमेश्वर की बात से बढ़कर तुम्हारी बात मानें'' (4:19)। अब पतरस और अन्यों ने किसी शब्द को काटा नहीं: ''मनुष्यों की आज्ञा से बढ़कर परमेश्वर की आज्ञा का *पालन करना ही कर्तव्य कर्म है*'' (5:29)!

प्रचार (5:30-32)

फिर उन्होंने लघु-उपदेश दिया, जिसमें यीशु की मृत्यु, जी उठने और महिमा पाने की मुख्य बातें थीं। उन्होंने उपदेश को इस तथ्य के साथ समाप्त किया कि पवित्र आत्मा (जिसने उन्हें आश्चर्यकर्म करने योग्य बनाया) उनकी बातों की सच्चाई का गवाह है! हिन्दी में यह संदेश केवल उन्हत्तर शब्दों में है,[25] परन्तु इन थोड़े से शब्दों में सभा के प्रति क्रोध भरा पड़ा था: इस्राएल को मन फिराव और पापों की क्षमा प्रदान की गई थी, का अर्थ निकलता था कि इस्राएल को पापों की क्षमा प्राप्त करने के लिए मन फिराना *आवश्यक* था! प्रेरितों को पवित्र आत्मा दिया गया क्योंकि उन्होंने परमेश्वर की बात मानी थी, का अर्थ यह निकलता था कि सभा में आत्मा नहीं था, इसलिए उन्होंने परमेश्वर की बात *नहीं* मानी![26] परन्तु, उन्हें सबसे अधिक क्रोधित करने वाली बात यीशु को मुक्तिदाता अर्थात उद्धारकर्त्ता बताना था![27] वह सभा ''उद्धारकर्त्ता'' शब्द से परिचित थी, जो जान बचाने वाले डॉक्टर के लिए या समस्याओं का समधान करने वाले दार्शनिक के लिए या देश को बचाने वाले राजनेता के लिए प्रयुक्त होता था। परन्तु, उनके प्राणों को बचाने वाला केवल यीशु ही को कहना,

उनके लिए घोर अपमान की बात थी!

जब पतरस ने सर्वप्रथम सुसमाचार संदेश का प्रचार किया,[28] तो सुनने वाले यहूदियों ''के हृदय छिद गये'' थे (2:37)। अब, जब पतरस और अन्य प्रेरितों ने महासभा में प्रचार किया तो, पवित्र शास्त्र बताता है कि ''यह सुनकर वे जल गए'' (आयत 33क)। स्थानीय भाषा में ये आयतें एक जैसी ही लगती हैं, परन्तु हैं नहीं। प्रेरितों 2 में यहूदियों ने परमेश्वर के सामने अपनी गलती को मान लिया था; प्रेरितों 5 में सभा अत्यन्त क्रोध से भर गई थी। यूनानी शब्द के अनुवाद ''जल गए'' का अक्षरश: अर्थ ''आरा चल जाना'' था; उन्हें लगा जैसे पतरस ने उनके दिल पर आरा चला दिया हो! और ये शब्द केवल अध्याय 7 में ही मिलते हैं, जब स्तिफनुस ने इसी सभा में प्रचार किया था। आयत 33 बताती है कि सभा के सदस्यों ने ''उन्हें मार डालना चाहा।'' यदि सभा को कोई रुकावट न होती तो, निस्संदेह वे प्रेरितों को बाहर ले जाकर उसी प्रकार पत्थर मरवाकर मार डालते जैसे बाद में उन्होंने स्तिफनुस को मार दिया था।

परन्तु परमेश्वर की योजनाएं तो और ही थीं।[29]

एक फरीसी (5:34-39)

सदूकियों को ही, जिन्होंने प्रेरितों को गिरफ्तार करने में पहल की थी, सबसे अधिक परेशानी हो रही होगी (आयत 17)। सभा में फरीसी लोग इतने भावात्मक रूप से शामिल नहीं होंगे। परमेश्वर ने सभा के खूनी खेल को रोकने के लिए एक फरीसी को इस्तेमाल किया, ''परन्तु गमलीएल नामक एक फरीसी ने, जो व्यवस्थापक और सब लोगों में माननीय था, न्यायालय में खड़े होकर प्रेरितों को थोड़ी देर के लिए बाहर कर देने की आज्ञा दी'' (आयत 34)।

प्रेरितों की पुस्तक में किसी फरीसी के बारे में हम यहां पहली बार पढ़ते हैं। उदारवादी सदूकियों की तुलना में, फरीसी लोग अधिक रूढ़िवादी थे।[30] क्योंकि वे मूसा की व्यवस्था के साथ-साथ लोगों पर परम्पराएं भी थोपते थे, इसलिए हम उन्हें ''विधिज्ञ''[31] कहेंगे।

यद्यपि महासभा में सदूकियों का बहुमत था, फिर भी कुछेक फरीसी सभा में जाने माने थे।[32] उनमें गमलीएल नाम का फरीसी विख्यात था।[33] इस्राएल में वह बहुत माननीय शिक्षक था। बाद में, उसकी मृत्यु होने पर कहा गया, ''क्योंकि रब्बान गमलीएल मर गया इसलिए व्यवस्था के प्रति श्रद्धा नहीं रही; और संयम भी उसी के साथ मर गए।'' इस तथ्य का पता इस बात से चलता है कि गमलीएल का कितना सम्मान था, उसने उग्रभीड़ का रूप ले चुकी सभा का ध्यान आकर्षित करके प्रेरितों को आज्ञा दी।

प्रेरितों को वहां से हटा कर संकट को टालने के लिए गमलीएल का यह पहला कदम था। उसका अगला कदम सभा को समझाना था:[34]

> ... हे इस्राएलियो, जो कुछ इन मनुष्यों से किया चाहते हो, सोच समझ के करना। क्योंकि इन दिनों से पहले थियूदास[35] यह कहता हुआ उठा, कि मैं भी कुछ हूं;[36]

> और कोई चार सौ मनुष्य उसके साथ हो लिए, परन्तु वह मारा गया; और जितने लोग उसे मानते थे, सब तितर-बितर हुए और मिट गए। उसके बाद नाम लिखाई के दिनों में यहूदा गलीली[37] उठा, और कुछ लोग अपनी ओर कर लिए: वह भी नाश हो गया, और जितने लोग उसे मानते थे, सब तितर-बितर हो गए। इसलिए अब मैं तुम से कहता हूं, इन मनुष्यों से दूर रहो और उन से कुछ काम न रखो; क्योंकि यदि यह धर्म या काम मनुष्यों की ओर से हो तब तो मिट जाएगा। परन्तु, यदि परमेश्वर की ओर से है तो तुम उन्हें कदापि मिटा न सकोगे; कहीं ऐसा न हो, कि तुम परमेश्वर से भी लड़ने वाले ठहरो (आयतें 35-39)।

गमलीएल ने अपनी बात इन शब्दों के साथ आरम्भ की ''सोच समझ के करना'' -अन्य शब्दों में, उसने कहा ''रुको और तुम जो करने जा रहे हो, उस पर पहले विचार करो।'' आमतौर पर जब किसी को गलत काम करने से रोकना हो तो उसकी सहायता के लिए सबसे महत्वपूर्ण ढंग है कि उसे उसके परिणामों पर विचार करने के लिए रोक दिया जाए। गमलीएल ने सभा को सुझाव दिया कि ''इनसे (प्रेरितों से) कुछ काम न रखो।'' उसने समझाया कि यदि मसीहियत ''मनुष्यों'' की ओर से हो तो सभा को उसका विरोध करने की आवश्यकता नहीं थी; इसने अपने आप ही समाप्त हो जाना था। (उसने अपने सुझाव को समझाने के लिए दो प्रसिद्ध घटनाओं को उद्धृत किया। दूसरी ओर उसने कहा, यदि मसीहियत ''परमेश्वर की ओर'' से थी तो, इसका विरोध करने से उन्हें *कोई लाभ नहीं* मिलने वाला था। उनके विरोध के बावजूद इसने बढ़ते ही जाना था और वे ''परमेश्वर से लड़ने वाले'' ठहरेने थे। इस प्रकार उसने निष्कर्ष निकाला कि, ''इन मनुष्यों से दूर ही रहो, और उनसे कुछ काम न रखो।''

क्योंकि मसीहियत तो बढ़ी ही और सभा परमेश्वर का विरोध करने वाली ठहरी, इसलिए गमलीएल के सुझाव के लिए उसकी प्रशंसा करने और नये धर्म के बारे में बात करने के लिए उसके शब्दों को अपनाने को मन करता है। तथापि, जो कुछ गमलीएल ने कहा,[38] वह आत्मा की *प्रेरणा* नहीं थी, और लूका ने उसके शब्दों को किसी झूठ के बारे में बात करने के लिए हमारी शिक्षा के लिए दर्ज नहीं किया। गमलीएल के सुझाव के सम्बन्ध में जॉन लेंज़ ने ध्यान दिलाया है:

I. यह मूर्खता है कि
   (क) किसी की सफलताओं या असफलताओं के आधार पर निर्णय देने का बहाना किया जाए,[39] अथवा
   (ख) तुरन्त लिए जाने वाले निर्णय को टालने का बहाना बनाया जाए।[40]

II. यह बुद्धिमानी है कि
   (क) दूसरों के न्याय में बार-बार नम्रता का व्यवहार हो, अथवा
   (ख) निर्णय लेने में हम से अलग विचार रखने वालों से नम्रता का व्यवहार हो।

जे.डब्ल्यू. मैक्गार्वे ने टिप्पणी की, ''गमलीएल तर्क दे रहा था ... कि क्या इस लहर

को *हिंसा* से दबा दिया जाना चाहिए; और इस बात पर उसका विचार निश्चत ही अच्छा था।'' जब कोई झूठी शिक्षा देता है तो परमेश्वर नहीं चाहता कि हम उस गलती को दबाने के लिए हिंसा का प्रयोग करें; बल्कि, परमेश्वर यही चाहेगा कि हम *सच्चाई* से झूठ का विरोध करें।

यदि लूका ने सभी धार्मिक स्थितियों के लिए गमलीएल के शब्दों की सिफारिश नहीं की तो उसने उन्हें दर्ज क्यों किया? मुख्यत, उसने गमलीएल के शब्दों को यह बताने के लिए दर्ज किया कि किस प्रकार परमेश्वर ने इस प्रसिद्ध शिक्षक को प्रेरितों के प्राण बचाने के लिए प्रयोग किया और दूसरा, उसने उसकी बातों को यह बताने के लिए दर्ज किया कि कैसे सुलझे हुए लोग किसी भी प्रकार मसीहियत को समाज के लिए खतरा नहीं मानते।

यदि गमलीएल अपने ही सुझाव को मान लेता, तो वह मसीही बन गया होता क्योंकि मसीहियत तो बढ़ी ही, और इसके अनेकों प्रमाण थे कि यह ''परमेश्वर की ओर से'' ही *थी*। जहां तक हमें पता है, वह मसीही नहीं बना,[41] परन्तु उसने प्रेरितों के प्राण अवश्य बचाये। शायद उसने बीज बोया जिसका फल बाद में उसे अन्य जीवनों में मिला।[42] यह भी सम्भव है कि उसके चेलों में से एक, तरसुस का रहने वाला शाऊल (22:3), उसकी बातें सुनने के लिए वहीं हो।

सताया जाना (5:40)

आयत 40 बताती है कि गमलीएल के बोलने के बाद, सभा ने ''उसकी बात मान ली।'' सभा ने गमलीएल की बात यहां तक मान ली कि उन्होंने प्रेरितों को वहां कत्ल नहीं किया। गमलीएल के बोलने के बाद हुई उसकी गर्मागर्म बातचीत की मैं कल्पना करता हूं: ''यदि हम इन्हें मार नहीं सकते, तो फिर क्या कर *सकते हैं*?'' अन्तत, किसी ने सुझाव दिया: ''चलो अपनी बात रखने के लिए इनकी पिटाई करके छोड़ देते हैं। हो सकता है उससे ये समझ जाएं!''

लिखा है, ''और [उन्होंने] प्रेरितों को बुलाकर पिटवाया'' (आयत 40ख)। पिटवाने का ढंग बहुत ही क्रूर था। पिटाई से कई लोग तो जीवन भर के लिए अपंग हो जाते थे; चाबुकों की इस मार से कई लोग तो मर भी जाते थे; शारीरिक और भावात्मक घावों के निशान तो जीवन भर के लिए रह जाते थे। चाबुक बनाने के लिए मुट्ठी के साथ चमड़े की कई पट्टियां कस कर बांधी जातीं। चमड़े की पट्टियों के सिरों पर धातु या लकड़ी के टुकड़े लगाए जाते, जिनकी चोटों से शरीर पर घाव हो जाते थे। कुशल जल्लाद किसी की पीठ पर हर एक प्रहार में कई-कई घाव कर डालता था। कानून के अनुसार अधिक से अधिक चालीस कोड़े (चाबुक) मारे जा सकते थे;[43] अधिक से अधिक सज़ा उन्तालीस कोड़ों की दी जाती थी।[44] बाहरी और आन्तरिक वस्त्र उतार दिए जाते थे या फाड़ दिए जाते थे, ताकि पीठ दिख सके। आरोपी के हाथ किसी खम्भे से बांध दिए जाते थे। एक जल्लाद कोड़े मारता था जबकि दूसरा गिनती करता था। इस बार, बारह लोगों की पिटाई की जानी थी कुल पांच सौ के लगभग कोड़े मारे जाने थे!

जब क्रूरता का यह काम पूरा हो गया, तो सभा ने उन्हें ''यह आज्ञा देकर छोड़ दिया, कि यीशु के नाम से फिर बातें न करना [फिर वही आज्ञा जो पहले दी गई थी]'' (आयत 40ग)। पिटाई के बाद जब वे बारह लोग, लहूलुहान हुए और सभागृह से घिसटते हुए निकले होंगे, तो सभा के बहुत से लोगों ने यही सोचा होगा, ''अब तो ये मर ही जाएंगे!''

आनन्द (5:41)

एक बार फिर मसीहियत नाज़ुक मोड़ पर आ चुकी थी। यदि इस निर्दयतापूर्ण पिटाई से सुसमाचार प्रचार बन्द हो जाता, तो शीघ्र ही कलीसिया का अस्तित्व भी मिट जाना था, क्योंकि ''(राज्य का) बीज तो परमेश्वर का वचन है'' (लूका 8:11)। यदि प्रेरित हम में से कइयों के जैसे होते तो अगली आयत ऐसे पढ़ी जाती; ''सो वे सभा के आगे से बिलखते हुए चले गए क्योंकि उनके साथ बहुत बुरा बर्ताव किया गया था'' या ''सभा के आगे से निकलकर वे चले गए, और दु:खी होकर कहते थे कि यीशु के पीछे चलना बहुत कठिन है।''

इसके विपरीत, आयत 41 में हम पढ़ते हैं कि, ''वे इस बात से *आनन्दित होकर* महासभा के साम्हने से चले गए, कि हम उसके नाम के लिए निरादर होने के योग्य तो ठहरे।'' जे. डब्ल्यू. मैक्गर्वे ने लिखा:

> यह कथन कि छूटने पर वे ''आनन्दित होकर ... चले गए ... कि हम उसके नाम के लिए निरादर होने के योग्य तो ठहरे'' अविश्वसनीय होता, यदि यह ऐसी पुस्तक में और ऐसे आदमियों ने न लिखा होता।

ऐंप्लीफाइड बाइबल ने ''योग्य तो ठहरे'' का विस्तार करके ''अपमान सह कर सम्मानित हुए'' लिखा है।

उन बारहों के लिए ऐसा व्यवहार कोई आश्चर्य की बात नहीं होगी, क्योंकि यीशु ने उन्हें पहले ही चेतावनी दी थी कि उन्हें मार पड़ेगी (मत्ती 10:17; मरकुस 13:9)। फिर उसने उन्हें पहाड़ी उपदेश में भी यह चुनौती दी थी:

> धन्य हैं वे, जो धर्म के कारण सताए जाते हैं, क्योंकि स्वर्ग का राज्य उन्हीं का है। धन्य हो तुम, जब मनुष्य मेरे कारण तुम्हारी निन्दा करें, और सताएं और झूठ बोल-बोल कर तुम्हारे विरोध में सब प्रकार की बुरी बातें कहें, *आनन्दित और मगन होना* क्योंकि तुम्हारे लिए स्वर्ग में बड़ा फल है इसलिए कि उन्होंने उन भविष्यवक्ताओं को जो तुम से पहले थे इसी रीति से सताया था (मत्ती 5:10-12)।

दुख सह कर भी आनन्दित होना हम में से किसी के लिए भी कठिन शिक्षा है। पतरस के लिए तो यह और भी कठिन था, क्योंकि जब भी उस पर प्रहार होता तो वह उसका प्रतिकूल उत्तर देने के लिए तैयार रहता था (मत्ती 26:51)। परन्तु, यीशु के सुखद प्रभाव

से, पतरस को यह समझ आ चुका था। बाद में उसने उनको लिखा, जो अपने विश्वास के कारण सताए जा रहे थे:

> ''हे प्रियो, जो दुख रूपी अग्नि तुम्हारे परखने के लिए तुम में भड़की है, इससे यह समझकर अचम्भा न करो कि कोई अनोखी बात तुम पर बीत रही है। पर जैसे-जैसे मसीह के दु:खों में सहभागी होते हो, आनन्द करो ... तुम में से कोई यदि मसीही होने के कारण दुख पाए, तो लज्जित न हो, पर इस बात के लिए परमेश्वर की महिमा करे'' (1 पतरस 4:12-16)।[45]

आप में से बहुतों ने मसीही होने के कारण मुझ से कहीं अधिक दुख उठाए होंगे। मुझे कभी किसी अधिकारी ने प्रचार करने से नहीं रोका; मेरे विश्वास के कारण कभी मेरे जीवन या जीवनस्तर में कोई समस्या नहीं आई। फिर भी, हम में से हर एक के लिए इसमें शिक्षा है, उनके लिए भी जो धार्मिक स्वतन्त्रता में रहते हैं। उदाहरण के लिए, मान लें कि हर मसीही को दस हज़ार रुपये दिए जाते हैं कि उन्हें मुसीबत के समय खर्च कर ले। कुछ मसीहियों को कहा जाता है कि जिस प्रकार मसीह के काम के लिए उन्होंने अपने जीवन बलिदान कर दिए हैं वैसे ही पूरे दस हज़ार रुपये एक ही बार अर्पित कर दें। परन्तु, हम में से बहुतों को एक बार में एक ही रुपया डालकर, हज़ारों बार डालना अच्छा लगेगा। मसीह के नाम की निन्दा होने पर प्रचारक हम पर क्रोधित हों, तो हम विरोध करते हैं। यह कष्ट तो केवल एक रुपये के मूल्य के समान है। जिसकी बुराई हो रही है, हम उसके पक्ष में खड़े हो जाते हैं और भीड़ हमारे साथ हो जाती है। वह एक और रुपया है। जब हम अपने आसपास रहने वाले अनैतिक और बेइमान लोगों के साथ नहीं चलते, हमारी हंसी उड़ाई जाती है, तो हम एक और रुपये के मूल्य के बराबर खर्च करते हैं। अन्त में, सब जोड़ कर एक ही बात उभर कर सामने आती है कि: ''... जितने मसीह यीशु में भक्ति के साथ जीवन बिताना चाहते हैं, वे सब *सताए जाएंगे*'' (2 तीमुथियुस 3:12)। दुख चाहे कैसा भी हो, हमें प्रेरितों की तरह ही इससे आनन्दित होना सीखना चाहिए, कि ''हम उसके नाम के लिए निरादर होने के योग्य तो ठहरे!''

दृढ़ता (5:42)

अधिकारियों ने फिर नियम ठहरा दिया था कि ''यीशु के नाम से फिर बातें न करना!'' इस बार भी प्रेरितों ने मनुष्यों के बजाय परमेश्वर की ही बात मानी: ''और प्रतिदिन मन्दिर में और घर-घर में उपदेश करने, इस बात का सुसमाचार सुनाने से, कि यीशु ही मसीह है न रुके'' (आयत 42)। अत्याचार उन्हें शिक्षा देने से रोक न सका; कष्ट से उन्होंने प्रचार करना बन्द नहीं किया; सभा की बातें उनकी गवाही में रुकावट नहीं बनीं।

आयत 42 में ''उपदेश'' शब्द प्रचलित यूनानी शब्द ''सिखाने''[46] के शब्द से लिया गया है, परन्तु यूनानी शब्द का अनुवाद ''प्रचार करना'' शब्द का क्रिया रूप है, जिससे हमें

''सुसमाचार''[47] शब्द मिलता है। मूलत:, ''वे सुसमाचार को फैलाते रहे!'' न्यू सैन्चुरी वर्ज़न में है कि ''वे यह शुभ समाचार सुनाते रहे ... कि यीशु ही मसीह है।'' सार्वजनिक तौर पर (मन्दिर में) और व्यक्तिगत तौर पर (घर-घर में), वे यीशु का सुसमाचार सुनाते रहे![48]

सारांश

अगले पाठ में, हम अपनी इस चुनौती पर विचार जारी रखेंगे कि जब मनुष्य ''नहीं'' कहता है तो हमें परमेश्वर की बात को मानना चाहिए। अभी, आइए हम सब दृढ़ निश्चय कर लें कि ''मनुष्यों की आज्ञा से बढ़कर परमेश्वर की आज्ञा का पालन करना ही कर्तव्य कर्म है,'' चाहे परिस्थितियां कैसी भी हों, परिणाम कुछ भी हों।

विज़ुअल-एड नोट्स

इस पाठ में, प्रेरितों के गिरफ्तार होने और बाद में उनकी पिटाई होने से, मसीहियों पर अत्याचार बढ़ने लगा। क्लास आरम्भ करने के लिए, ''दिलचस्पी पैदा करने वाली'' बातचीत के लिए अच्छा है कि सही भाव से अत्याचार के महत्व पर बात की जाए। लोहे या स्टील से बनी कई वस्तुएं (या उसकी तस्वीरें) जैसे कि पुरानी नाल, कील, चाकू या सुइयां इत्यादि दिखाते हुए आरम्भ करें। एक एक करके इनमें से हर एक के *महत्व* की ओर ध्यान दिलाएं और दिखाएं कि ये सभी *आग से नरम* हो सकते हैं। पतरस (इस पाठ में सताए जाने वालों में से एक) ने बाद में ''दुख रूपी अग्नि'' की बात की (1 पतरस 4:12)। सम्भवत: परीक्षाएं और अज़माइशें हमें स्थिर और मज़बूत कर सकती हैं (इस पाठ में प्रेरितों के व्यवहार पर ध्यान दें)! प्रश्न यह है ''परीक्षाएं आने पर *हमारी* प्रतिक्रिया क्या होनी चाहिए?''

प्रवचन नोट्स

नवम्बर 1986 में *प्रीचर'ज़ पीरियोडिकल* (अब *ट्रुथ फ़ॉर टुडे*) के अंग्रेज़ी संस्करण में प्रेरितों 5:12-42 पर निक हेमिल्टन ने ''वि मस्ट ओबे गॉड रादर दैन मेन'' शीर्षक से एक प्रवचन दिया। उसने मुख्य बातों के लिए तीन ''C'' का प्रयोग किया: (1) The Disciples' Charge [चेलों का काम] (आयतें 12-21); (2) The Disciples' Choice [चेलों की पसन्द] (आयतें 21-32); (3) The Disciples' Contentment [चेलों की संतुष्टि] (आयतें 33-41); (4) The Disciples' Commitment [चेलों की वचनबद्धता] (आयत 42)।

द बाइबल ऐक्सपोज़िशन कमैन्ट्री, vol. I में वारेन वियर्सबे का प्रेरितों 5:17-42 पर एक पाठ था। मुख्य बातों में ज़ोर दिया गया कि सत्य के प्रति विभिन्न लोगों की क्या

प्रतिक्रिया थी: (1) सत्य पर आक्रमण (सभा द्वारा) (आयतें 17-28); (2) सत्य की पुष्टि (प्रेरितों के द्वारा) (आयतें 29-32); (3) सत्य से बचाव (गमलीएल द्वारा) (आयतें 33:39); (4) सत्य की घोषणा (कलीसिया द्वारा) (आयतें 40-42)।

विवेक

विवेक हम सब के अन्दर पाई जाने वाली स्वाभाविक चेतना है, जो कहती है कि कुछ काम सही हैं और कुछ गलत हैं (रोमियों 2:15, 16)। (निस्संदेह, सम्भव है कि विवेक कठोर होकर अपना यह काम करना बन्द कर दे (देखिए 1 तीमुथियुस 4:2)। परमेश्वर ने भलाई करने में उत्साहित करने के लिए हमें विवेक दिया है। विवेक को स्वाभाविक ही पता चल जाता है कि कुछ बातें गलत हैं। (उदाहरण के लिए, लगभग सभी समाजों में, हत्या को गलत माना जाता है-कम से कम उस समाज के अन्दर। रोमियों 2 में मुख्य बात यही लगती है कि सही या गलत की कुछ न कुछ समझ सभी में है, परन्तु किसी का भी जीवन सही या गलत की उसकी चेतना के साथ पूर्णतया नहीं चलता। इसलिए, सभी पापी हैं-यहां तक कि वे भी जो पवित्र शास्त्र से परिचित नहीं हैं।) तथापि,अन्य बातों में, विवेक का शिक्षित होना आवश्यक है।

विवेक को गलत ढंग से सिखाया जा सकता है। जब पौलुस ने मसीहियों को सताया तो उस समय उसने अपने विवेक के विरुद्ध कुछ नहीं किया था (23:1), क्योंकि अपनी पुरानी शिक्षा के अनुसार, वह परमेश्वर की इच्छा को पूरा कर रहा था। आप के विवेक को सही या गलत किसी भी तरह सिखाया गया हो, आप उसके विरुद्ध काम नहीं करते (तु. रोमियों 14:20-23), क्योंकि यदि आप ऐसा करते हैं तो आपने इसे मार दिया। यदि आप ऐसा करते ही रहते हैं, तो आपका विवेक मानो जलते हुए लोहे से दागा गया है और जो काम परमेश्वर की ओर से सौंपा गया है, उसे करने में यह नाकाम रहा। इसका अर्थ यह नहीं कि मसीही बनने पर हमें अन्धविश्वास की उन बातों से सम्पर्क तोड़ने से इन्कार करना चाहिए, जो गैर-मसीही होते हुए हमें सिखाई गई थीं। हमें अपने विवेक को परमेश्वर के वचन के प्रकाश में फिर से सिखाने के लिए परिश्रम से अध्ययन करना चाहिए; इससे हमें अतीत के बन्धनों से छुटकारा मिलेगा (यूहन्ना 8:32)। दमिश्क के मार्ग पर प्रभु के दर्शन ने सीधे राह पर लाकर पौलुस के विवेक को सुधारकर सीधी राह की तरफ मोड़ा। परन्तु, जब तक हमारे विवेक को पुनः शिक्षित नहीं किया जाता हमें चाहिए कि हम उसके विरुद्ध न जाएं।

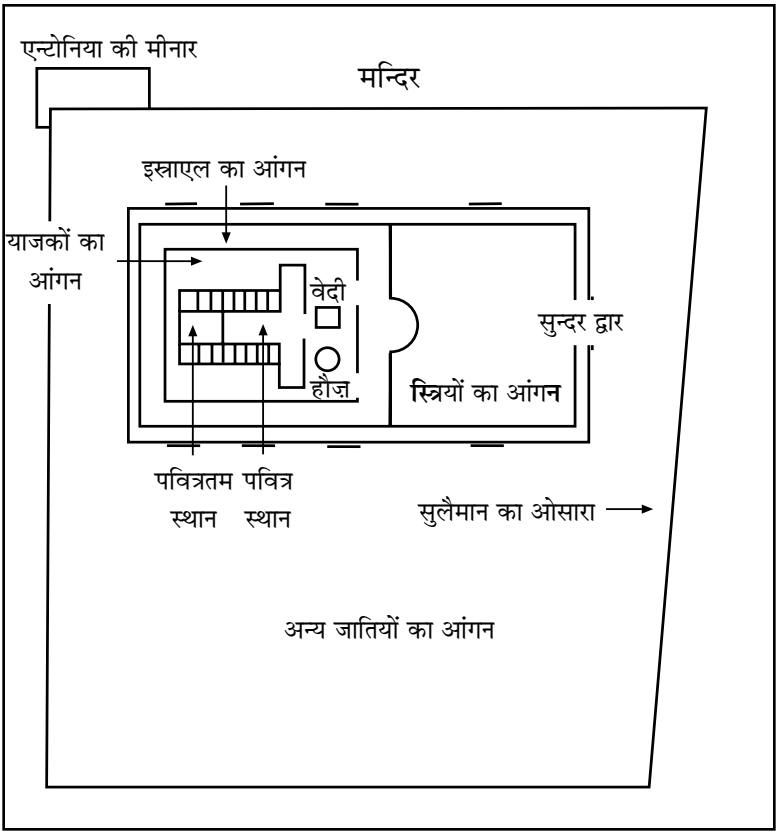

मन्दिर का रेखाचित्र

पादटिप्पणियां

[1]जैसा कि परिचय में ध्यान दिलाया गया था, कि प्रेरितों के काम में लूका के उद्देश्यों में स्पष्टतया यह दिखाना था कि देश में गड़बड़ी मसीहियों के कारण नहीं बल्कि यहूदियों के कारण हुई थी। [2]परमेश्वर ने मनुष्य की भलाई के लिए घर की स्थापना की, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि प्रत्येक घर वैसा ही है, जैसा परमेश्वर ने चाहा। [3]कुछ लोग कहते हैं कि यदि हम इससे सहमत नहीं हैं कि कर कहां खर्च किये जाते हैं तो हमें कर अदा नहीं करने चाहिए। यकीनन ही, कोई भी मसीही प्रत्येक रोमी नीति से सहमत नहीं होगा, परन्तु फिर भी यीशु और पौलुस ने रोमी सरकार को कर अदा करने के लिए कहा। हमने अपने कर अदा *किए* या नहीं, इसका हिसाब हमें परमेश्वर को देना पड़ेगा; सरकार में नेतृत्व की कुर्सियों पर बैठे अपना ही हिसाब देंगे कि उस धन का उपयोग *कैसे* किया गया। [4]उदाहरण के लिए 1 पतरस 2:17 का हिन्दी अनुवाद है ''हर एक को उसके योग्य आदर दो: विश्वास में भाइयों से प्रेम रखो, परमेश्वर से डरो, राजा का सम्मान करो।'' ''आदर दो'' और ''सम्मान करो'' एक ही यूनानी शब्द से है। [5]इन बातों में निहित है (आयत 42)। [6]यह पहली बार है कि पुस्तक में अशुद्ध आत्मा के सताये हुए का उल्लेख किया गया है। उदारवादी

विद्वान वास्तव में अशुद्ध आत्मा के सताए जाने का यह कहकर इन्कार करते हैं कि शारीरिक बीमारी को ही अशुद्ध आत्माएं माना जाता था। परन्तु, डॉ. लूका ने शारीरिक बीमारी और उनमें जो ''अशुद्ध आत्माओं के सताए हुए'' थे अंतर किया है। बाद के एक भाग में ''अशुद्ध आत्माओं'' पर अतिरिक्त लेख देखिए। [7]फिर पतरस को प्रमुखता से दिखाया गया है। लोगों में अन्य प्रेरितों की छाया के बारे में भी यही विचार थे या नहीं, लूका ने इसका उल्लेख नहीं किया। [8]उन दिनों छाया के बारे में लोगों में तरह-तरह के अंधविश्वास थे। [9]सम्भवत: यह कायफा था, क्योंकि वर्तमान महायाजक महासभा (सन्हेद्रिन) के प्रधान के रूप में काम करता था। [10]महासभा मुख्यत: सदूकियों से बनती थी।

[11]''पंथ'' हेयरेसिस (*hairesis*) से लिया गया है, जिससे अंग्रेज़ी शब्द हेयरसी (heresy) निकला है। 1 कुरिन्थियों 11:19 और गलतियों 5:20 में शब्द का बहुवचन रूप ''विधर्म'' अनुवाद किया गया है। शब्द का फरीसियों के लिए प्रयोग (प्रेरितों 15:5; 26:5) और मसीहियों के लिए अप्रयोग (प्रेरितों 24:5; 28:22) भी किया जाता है। [12]वे यीशु की प्रसिद्धि से भी जलते थे (मत्ती 27:18; मरकुस 15:10)। [13]अनुवादित शब्द ''स्वर्गदूत'' का यूनानी अर्थ ''संदेशवाहक'' है और यह मानवीय या स्वर्गीय संदेशवाहक के लिए प्रयुक्त हो सकता है। इस कारण कुछ लोग (मुख्यत: जो आश्चर्यकर्मों का इन्कार करते हैं)तर्क देते हैं कि हो सकता है कि प्रेरितों को जेल में से मसीही उद्देश्यों से सहानुभूति रखने वालों में से किसी ने छुड़ाया हो। परन्तु, उनके छूटने की सभी परिस्थितियां, और प्रेरितों 12 में इसी प्रकार की कहानी, किसी ईश्वरीय संदेशवाहक के होने के पक्ष में है। और, यह शब्द ''नये नियम में परमेश्वर के संदेशवाहक के लिए अधिक प्रयोग किया गया है।'' प्रत्येक अनुवाद जिसे में जानता हूं, उसमें इस शब्द का अनुवाद ''स्वर्गदूत'' ही किया गया है। [14]सम्भवत: यह संकेत देता है कि सुसमाचार के प्रचार का काम मुख्यत: अभी भी प्रेरितों के कंधों पर था - यदि वे प्रचार नहीं करते, तो यह नहीं हो सकता था। वह स्थिति शीघ्र ही बदल जानी थी (प्रेरितों 6:8-10; 8:1, 4, 5)। [15]शायद लूका ने सन्हेद्रिन को ''महासभा'' कहा ताकि रोमी अधिकारी थियुफिलुस (प्रेरितों 1:1) को सभा का महत्व अच्छी तरह से समझ में आ जाए। [16]मन्दिर की पहरेदारी रोमी सिपाही नहीं बल्कि यहूदी ही करते थे। [17]यह देखने के लिए कि यदि पहरेदारों को लोगों का डर न होता तो प्रेरितों के साथ वे कैसा बर्ताव करते, देखिए प्रेरितों 21:30-36. [18]पतरस ने विरोध करने की कोशिश की, परन्तु यीशु ने उसे डांटा (तु. लूका 22:50, 51; यूहन्ना 18:10, 11)। निस्संदेह, पतरस को सबक मिल गया। [19]स्पष्टत, *आधिकारिक* तौर पर यह माना जाता था कि रोमी ही ज़िम्मेदार थे क्योंकि उन्होंने ही उसे क्रूस पर चढ़ाया था। [20]वाक्यांश ''यीशु को जिलाया'' का अर्थ परमेश्वर द्वारा यीशु को महिमा देना (जैसे ''एक नये राजा के उदय'' में) या परमेश्वर द्वारा यीशु को मृतकों में से जीवित करना हो सकता है।

[21]मूल में ''क्रूस'' के स्थान पर ''वृक्ष'' है (देखिए KJV)। सम्भवत: यह क्रूस की ठोकर की ओर संकेत है (ध्यान दें गलतियों 3:13, जिसे व्यवस्थाविवरण 21:23 से उद्धृत किया गया है)। [22]यही शब्द प्रेरितों 3:15 में मिलता है। उस आयत पर नोट्स देखिए। [23]पश्चात्ताप परमेश्वर की ओर से दान इस अर्थ में हैं कि परमेश्वर मन फिराने के लिए प्रेरणा (रोमियों 2:4) और मन फिराने का अवसर देता है। [24]प्रेरितों के काम की पुस्तक में, शेष नये नियम की तरह, उद्धार दिलाने वाला विश्वास वही विश्वास है जिसमें आज्ञा का पालन है (रोमियों 1:5; 16:26; गलतियों 5:6; याकूब 2:14-26)। [25]इस गिनती में आयत 29 के आरम्भिक शब्द शामिल नहीं हैं। यूनानी में इसके केवल पचास शब्द हैं। [26]तात्पर्य यह कि यदि वे आज्ञा *मानते,* तो उन्हें पवित्र आत्मा भी मिलता। जब वे बपतिस्मा लेते तो यह सच हो जाता (प्रेरितों 2:38 पर नोट्स देखिए)। यकीनन ही, उन्हें पवित्र आत्मा का वही प्रदर्शन नहीं मिलना था जो प्रेरितों को मिला था, परन्तु परमेश्वर के पुत्र होने के नाते उन्हें परमेश्वर के पुत्र का आत्मा मिलना था (गलतियों 4:6)। [27]प्रेरितों ने कई प्रकार से ज़ोर दिया कि उद्धार केवल यीशु के द्वारा ही है, परन्तु प्रेरितों के काम की पुस्तक में शब्द ''उद्धारकर्त्ता'' यहां पहली बार मिलता है। [28]इस संदेश का पूरी भरपूरी के साथ प्रचार किया गया (प्रेरितों 2)। [29]बाद में परमेश्वर ने प्रेरित याकूब (प्रेरितों 12:1,2) और उसके भी बाद, शेष प्रेरितों में से अधिकतर की हत्या की अनुमति दे दी। परन्तु, प्रेरितों के कंधों पर बहुत बोझ था, क्योंकि उन सबने अब मारे जाना था। [30]शब्दावली में देखिए ''फरीसी''।

[31]कुछ लोग गलती से व्यवस्था के साथ चिपकने वाले को ''विधिज्ञ'' कहते हैं। उस परिभाषा के अनुसार, यीशु एक विधिज्ञ था (मत्ती 7:21-23)। परन्तु, ''एक विधिज्ञ'' वह है ''जो वहां बांधता है, जहां परमेश्वर ने नहीं बांधा,'' जबकि ''एक उदारवादी'' ''वह है जो वहां खोलता है जहां परमेश्वर ने नहीं खोला।'' [32]अधिकतर शास्त्री फरीसियों में से थे; सभा में शास्त्रियों की संख्या काफी थी (प्रेरितों 4:5, 15)। [33]यह गमलीएल I अर्थात गमलीएल का पिता है। उसे ''रब्बान'' ''हमारा गुरु'' कहा जाता था; साधारण शिक्षकों को ''रब्बी'' (मेरा गुरु) कहा जाता था। उससे पहले केवल सात लोगों को ही यह उपाधि मिली थी। वह अपने प्रसिद्ध दादा हिलेल के दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करता था और अपनी धर्मपरायणता के लिए जाना जाता था। [34]एक बार फिर, विद्वान इसमें दिलचस्पी लेते हैं कि जो कुछ बन्द दरवाज़ों के पीछे हुआ, उसका लूका को कैसे ''पता चला।'' सम्भावनाएं तो बहुत सी हैं, परन्तु लूका हमेशा पवित्र आत्मा की प्रेरणा से लिखता था। [35]थियूदास की घटना विवादास्पद हो चुकी है क्योंकि लूका द्वारा थियूदास के उल्लेख के बाद जोसेफस ने किसी थियूदास के विद्रोह के बारे में लिखा है। कुछ संदेहवादियों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि सम्भव है कि जोसेफस और लूका दो अलग-अलग थियूदासों की बात कर रहे हों, या वे एक ही थियूदास की बात कर रहे हों और यह कि जोसेफस ने समय गलत बताया हो (जोसेफस ने केवल एक ही गलती नहीं की होगी)। कुछ भी हो, हम यह सुनिश्चित कर सकते हैं कि लूका ने ठीक-ठीक वही कहा जो गमलीएल ने कहा। [36]शायद उसने कोई भविष्यवक्ता या मसीह होने का दावा किया। [37]जोसेफस ने भी यहूदा के विद्रोह के बारे में बताया। उसने नये कर प्रावधानों का विरोध किया, जो सन 6 में प्रभावी हुए जब रोम ने यहूदिया पर एक राज्यपाल ठहराया। यह जनगणना लूका 2 में उल्लेखित जनगणना के बाद हुई। उसकी लहर का जोश जेलोतेसों में अभी भी था (ध्यान दें प्रेरितों 1:13)। [38]गमलीएल के शब्द फरीसियों की धर्मशास्त्रीय स्थिति के अनुरूप थे, मसीही धर्मशास्त्रीय स्थिति के नहीं। [39]यद्यपि अन्त में जीत सच्चाई की ही होगी, इस जीवन में झूठ आमतौर पर सफल होता है। [40]झूठ के बारे में यीशु और प्रेरितों में से किसी ने भी ''प्रतीक्षा करो और देखो'' की नीति नहीं अपनाई (1 यूहन्ना 4:1)।

[41]बाद में एक बात प्रसिद्ध हुई कि गमलीएल भी मसीही बन गया, परन्तु इसके समर्थन में कोई प्रमाण नहीं है। गमलीएल में बहुत से अच्छे गुण थे, परन्तु स्पष्टत: मसीहियत तक पहुंचने में उसमें एक काला धब्बा था। [42]फरीसियों में से काफी संख्या लोग मसीही बन गए (प्रेरितों 15:5; 23:6) जिसमें शाऊल/पौलुस भी था। [43]व्यवस्थाविवरण 25:1-3. यह न्यायियों की समझ पर छोड़ दिया जाता था कि किसी आरोप के लिए कब कितनी पिटाई करनी है और कितने कोड़े मारे जाने चाहिए। [44]2 कुरिन्थियों 11:24. बहुत से लोगों का मानना है कि वे चालीस से एक कम पर रुक जाते थे क्योंकि यदि कोई जल्लाद चालीस से ज्यादा कोड़े मारता, तो जितने अधिक कोड़े उसने लगाए होते, उतने ही उसकी पीठ पर मारे जाते थे। [45]रोमियों 5:3-5; 2 कुरिन्थियों 6:10; फिलिप्पियों 1:29; 1 पतरस 1:6-9 भी देखिए। [46]वह शब्द *डिडेस्को* है, जिससे हमें अंग्रेज़ी के शब्द ''डिडेक्टिक'' (शिक्षात्मक) जैसे शब्द मिलते हैं। [47]शब्दावली में देखिए ''सुसमाचार।'' ''प्रचार'' के लिए अधिक प्रचलित इस शब्द का अर्थ है ''घोषणा करना'' (अर्थात राजा की घोषणाओं का ऐलान)। [48]आयत 42 को रेखांकित कर लें; यह कलीसिया के विकास के ''भेदों'' में से एक और प्रमुख भेद है! ऐसी ही एक और आयत के लिए, देखिए 20:20.